अवध के नवाबों के संरक्षण में संगीत और नृत्य का विकास

डॉ. सतीश कुमार सिंह,
एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग,
डी.एस.एन. पी.जी. कालेज, उन्नाव

शोध सार

मुगल साम्राज्य के पतन के साथ ही शासन की दशा सोचनीय होने के कारण संगीत और नृत्य कला का क्रमशः ह्रास हुआ और कलाकारों का दिल्ली से पलायन हुआ। इसके पश्चात् इन कलाओं को जीवित रखने का श्रेय निःसन्देह अवध के नवाबों को जाता है। अवध के नवाबों ने संगीत और नृत्य को न केवल प्रोत्साहन दिया बल्कि इन्हें राजकीय संरक्षण भी प्रदान किया। अवध के नवाबों के संरक्षण के कारण अन्य स्थलों से संगीतज्ञ यहाँ बसने लगे। यहाँ संगीत की दो धाराएँ कव्वाली ग़ज़ल एवं भारतीय शास्त्रीय संगीत दोनों परम्पराएँ मिलती है। अवध में सोज़ख्वानी परम्परा, ख्याल गायिकी, ठुमरी गायिकी एवं राग भैरवी गाने वाले महान संगीतज्ञ हुए। नवाब वाजिद अली शाह ने नृत्य और गायन दोनों परम्पराओं को प्रोत्साहित और कलाकारों को राज्याश्रय प्रदान किया। बख्शू खाँ एवं मोदू खाँ को लखनऊ के तबले घराने का प्रवर्तक माना गया है। ख्याल गायक नबी शोरी (शोरी मियाँ) ने एक नयी गायन शैली 'टप्पा' का अविष्कार किया। तवायफों द्वारा मुजरे में गज़ल गायकी का प्रचलन था जिसके कारण अनेक गायक–नृत्यांगनाएँ और शायर जो दिल्ली से थे, लखनऊ में आ बसे थे।

मुख्य बिन्दुः *हिन्दू मुस्लिम संस्कृति, सोज़ख्वानी, ख्याल, ठुमरी, भैरवी, कत्थक, वाद्य यंत्र एवं नृत्य*

भारत में संगीत का आरम्भ आदिकाल से मिलता है। यहाँ संगीत का प्रारम्भ आराधना और प्रेम के संदर्भ में हुआ है। भारत में पहले गायक ब्राह्मण थे जो प्रारम्भ में पूजा–पाठ करते और कराते समय अपने आराध्य की स्तुति में भजन गाया करते थे। कृष्ण के जन्म ने उनके प्रेम को पूजा में परिणित कर प्रेम–संगीत को जन्म दिया। गायन के साथ–2 हावभाव और भावनाओं का नृत्य के माध्यम से प्रस्तुत किया गया।[1] यहाँ का संगीत बहुत नियमबद्ध एवं उच्चकोटि का रहा है। भारत में मुसलमानों के आगमन एवं बसने के कारण प्रत्येक क्षेत्र पर उनका प्रभाव पड़ा और एक मिश्रित संस्कृति का जन्म हुआ। भारतीय संस्कृति भी इन मुस्लिमों के प्रभाव से पृथक न रह सकी। मुसलमानों का संगीत सबसे पहले इब्ने मुसह्हज ने बनाया।[2] इसके पश्चात् अरबी और फारसी संगीत से मिलकर एक नया और पूर्ण संगीत का अविष्कार हुआ जो सारे संसार में फैल गया और वही अंत में ईरानी संगीत था। भारतीय मुसलमानों के ईरान से सम्बन्ध होने के कारण ईरानी कव्वालों ने हिन्दुस्तान के संगीत पर थोड़ा बहुत असर डाल ही दिया। ईरान के संगीत पर सूफियों का प्रभाव सदैव रहा है वे संगीत को आत्मिक और आध्यात्मिक प्रगति के लिए आवश्यक मानते थे। अतः उनके अनेक राग भारतीय संगीत में शामिल हो गये। जंगूला (जंगला), जीफ, शाहाना, दरबारी, ज़िला (खमाच), बग़ैर के बारे में कहा जाता है कि ईरानी राग है जो यहाँ के संगीत में आकर मिल गये थे। अकबर के समय में यहां के प्रसिद्ध संगीतज्ञ रामदास को राजाश्रय प्राप्त था।[4] मुगलकाल के अन्तिम दिनों में शासन की दशा सोचनीय होने के कारण संगीत एवं नृत्यकला को प्रोत्साहन नहीं मिला। अतः कलाकारों का दिल्ली से पलायन हुआ। इस दौर में इन कलाओं को जीवित रखने का श्रेय अवध के

नवाबों को जाता है। अवध के नवाबों के प्रोत्साहन देने के कारण लखनऊ में महान संगीतज्ञ हुए एवं अन्य स्थानों से भी संगीतज्ञ यहाँ आकर बसने लगे। लखनऊ की सामाजिक–राजनीतिक गतिविधियाँ और प्रचलित रीति–रिवाजों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यहाँ संगीत की दो धाराओं कव्वाली–ग़ज़ल एवं भारतीय शास्त्रीय संगीत का प्रवेश नवाबों के आगमन से बहुत पहले हो चुका था। सन् 1724 में जब सआदत खाँ बुरहान–उल–मुल्क को मुगल सम्राट मुहम्मद शाह ने अवध का नवाब या सूबेदार नियुक्त किया तब लखनऊ में शेख पठानों का वर्चस्व था और उन लोगों के समय 'पीरों' और फकीरों की मान्यथा थी।[5] पन्द्रहवीं शताब्दी में भारतीय संगीत की शास्त्रीय पद्धति के लखनऊ में आने के संकेत मिलते हैं विष्णु शर्मा नामक एक प्रकाण्ड विद्वान ने लखनऊ में गोमती नदी के तट पर एक यज्ञशाला स्थापित की। इस यज्ञशाला में नियमित रूप से गायन–वादन के बीच सामगान हुआ करता था।

सआदत खाँ की मृत्यु के पश्चात् उनके दामाद सफदरगंज गद्दी पर बैठे। राज्य की समस्याओं के कारण इन्हें आराम का अवसर कम मिलता परन्तु थकान मिटाने क लिए संगीतज्ञों को बुलाते थे। सफदरगंज की मृत्योपरान्त शुजाउद्दीन गद्दी पर बैठे। जिनके शासनकाल में लखनऊ का सांस्कृतिक विकास हुआ। शुजाउद्दौला ने फैजाबाद शहर बसाया और दिल्ली छोड़कर आने वाले संगीतज्ञों को पूर्ण संरक्षण एवं सम्मान देकर प्रतिष्ठित भी किया।[6] अब्दुल हलीम शरर लिखते हैं दिल्ली में बस इतनी प्रगति हो पायी कि यह रोचककला लखनऊ के दरबार में पहुँच गयी और नवाब की गुणग्राहिता और उदारता के कारण हिन्दुस्तान के संगीतकार अवध में जमा हो गये। शुजाउद्दौला के सम्बन्ध में ''तारीख–ए–फैजाबाद'' के लेखक का कहना है कि उन्हें नाच गाने का बड़ा शौक था।[7] शुजाउद्दौला के सम्बन्ध में यह भी कहा जाता है कि नगर में पूरी रात घुँघरूओं की रुनझुन सुनायी देती थी। नजमुल गनी के अनुसार, शुजाउद्दौला की सवारी के साथ बारह सौ तवायफों की टोली हुआ करती थी। इनके साथ चल रहे अधिकांश वादक (सजिन्दे) घोड़ों पर सवार रहते थे।[8] अवध में सोज़ख्वानी परम्परा (किसी मृत व्यक्ति के संबंध में गाकर शोक प्रकट करना) की अवध में नींव रखने का श्रेय शुजाउद्दौला को ही जाता है। इनके समय में स़ोज को राग–रागनियों में बाँधकर स़ोजख्वानी को कुछ ऐसे ढंग से प्रस्तुत किया कि वह गायन की विशिष्ट शैली बन गयी।[9] शुजाउद्दौला के पश्चात् उनके पुत्र मिर्ज़ा आसफुद्दौला उनके उत्तराधिकारी बने। शासन की बागडोर संभालने के पश्चात् उन्होंने राजधानी को फैजाबाद से लखनऊ स्थानान्तरित कर दिया। इनके संरक्षण में संगीत पर आधारित फारसी भाषा में ''उसूल उन नग्मात उल आसिफिया'' नामक पुस्तक लिखी।[10] इस पुस्तक के रचयिता अरबी, फारसी एवं संस्कृत के ज्ञाता थे। जिसने इस पुस्तक द्वारा भारतीय संगीत कला को स्पष्ट करने की चेष्टा की और साथ ही यह भी बताया कि गायक एवं उस्तादों के अतिरिक्त लखनऊ में स्त्रियाँ भी संगीत में पारंगत एवं राग–रागनियाँ ऐसी सुन्दरता से गाती कि श्रवणकर्ता मुग्ध हो जाते थे। सुन्दरजान नामक वैश्या नवाब आसिफुद्दौला के यहाँ सेविका थी और 'ख्याल' गाने में अभ्यस्त थी। बड़ी मिसरी भी अच्छी गायिका थी और आसिफुद्दौला की यात्रा में साथ रहती थी।[11] आसिफुद्दौला के शासनकाल में दिल्ली के तबला अन्वेषक सुधार खाँ के पौत्र बख्शू खाँ एवं मोदू खाँ लखनऊ आकर बस गये कालान्तर में इन लोगों को तबले के लखनऊ घराने का प्रवर्तक माना गया। इसी समय के गुलाम रसूल और जानी प्रख्यात ख्याल गायक हुए जो नवाब आसिफुद्दौला के समय लखनऊ बस गये। कहा जाता है कि लखनऊ की जबड़े की तान के प्रवर्तक ये ही थे।[12] ख्याल गायक गुलाम रसूल के पुत्र गुलाम नबी शोरी जिन्हें शोरी मियाँ के नाम से जानते हैं। इन्होंने एक नये प्रकार की गायन शैली को जन्म दिया जिसका नाम 'टप्पा' पड़ा। इस शैली को आसिफुद्दौला के दरबार में स्थान प्राप्त हुआ। शोरी मियाँ पंजाब से लखनऊ आये और उन्होंने विभिन्न राग–रागिनियों में टप्पों की अनेक बन्दिशें तैयार कीं।[13]

नवाब सआदत अली खाँ संगीत प्रेमी थे। उनके शासनकाल में जन समुदाय के बीच राग भैरवी अत्यधिक प्रसिद्ध हुयी।[14] सोज़ख्वानी के गायन में राग भैरवी का सबसे अधिक प्रयोग किया जाता था। रज़ब अली एवं फजल अली नामक दो गायक प्रातः नवाब सआदल अली खाँ के यहाँ 'ख्याल' गाते थे। नवाब के यहाँ सहडू बाई नामक गायिका प्रातःकाल 'नसीन सहरी' गाया करती थी।[15]

नवाब गाजीउद्दीन हैदर के काल में सोज़ख्वानी (मर्सिया को कलात्मक रूप से गाकर प्रस्तुत करना) को शास्त्रीय संगीत के सुर ताल के नियमों के अनुरूप प्रस्तुत किया जाने लगा। मर्सिया पढ़ने वाले ज़नाब मीर अली साहब ने मर्सिया पढ़ने की नवीन शैली का अविष्कार किया।[16] इन्हीं के काल में लखनऊ निवासी हैदरी खाँ नामक व्यक्ति जो सिड़े हैदरी खान के नाम से विख्यात थे।[17] नवाब गाजी हैदर के समय में ही दशवरी ने पेट के राग का अविष्कार किया।[18] संगीत ने नवाब नासिरउद्दीन हैदर के काल में अपना महत्व बनाये रखा। नवाब साहब जिस समय प्रातःकाल निद्रा से उठते थे तुरन्त बाजे बजने लगते एवं गायन आरम्भ होता था। इन वाद्य यंत्रों में अंग्रेजी बाजा भी उन्हें बहुत पसन्द था। नवाब साहब को सगीत से इतना प्रेम था कि उन्हें संगीत पर कोई पुस्तक प्राप्त होती तो वह तुरन्त राग को उसी रूप में सुनते थे। एक भैरवी राग के श्रवण हेतु लगभग 500 स्त्रियाँ दुल्हनों के समान श्रृंगार एवं वस्त्र पहनतीं, तब यह राग सुना जाता और यह उत्सव 30 दिन चलता था।[19] इले खान नामक व्यक्ति जो तहसीलगंज में रहता था। उन्होंने नसीरूद्दीन हैदर व वाजिद अली के काल में होरी एवं ध्रुपद राग गाने में विशेष योग्यता प्राप्त की थी।[20]

नवाब मुहम्मद अली शाह एवं नवाब अमजद अली शाह के काल में अवध में संगीत समाये समाप्त हो गयी थी। दोनों नवाबों को संगीत में कोई रूचि नहीं थी। अतः संगीतकारों को राज्याश्रय मिलना समाप्त हो गया। इन नवाबों के काल में अनेक संगीतज्ञ लखनऊ से बाहर चले गये। संगीत को अवध में पुनः स्थापित करने का कार्य नवाब वाजिद अली शाह ने किया। वे भारतीय संगीत को ऐसा रूप देना चाहते थे जो सरल, सुहाना और मजेदार हो और साथ ही उसका शास्त्रीय पक्ष भी स्थापित रहे। अतः उन्होंने संगीत के तीन अंगों को समझने के लिए गायन विद्या में उस्ताद बासित खाँ को, वादन के लिए उस्ताद नवाब कुतुब खाँ को तथा नृत्य विद्या सीखने के लिए नृत्याचार्य ठाकुर प्रसाद को अपना गुरु बनाया। ढोलक और ताश बजाने की कला उन्हें पहले से आती थी। धीरे–2 वाजिद अली शाह का संगीत पर इतना अधिकार हो गया कि समकालीन लेखकों ने उन्हें अपने समय का सर्वोत्तम कलाकार घोषित कर दिया।[21] नवाब वाजिद अली शाह के समय में प्रख्यात संगीतकार आचार्य प्यारे खाँ, जाफ़र खाँ, हैदर खाँ और वासित खाँ थे ये सभी मियाँ तानसेन के खानदान की यादगार थे।[22] हैदर खाँ का ध्रुपद एवं होरी पर असाधारण अधिकार था। नवाब ने स्वयं अनेक राग–रागिनियों का अविष्कार किया, उदाहरणार्थ जूही, जोगी, कन्नड़ (श्याम), शाह पसन्द आदि अनेक गीतों की रचना की थी।[23] रागों एवं संगीत के अतिरिक्त नवाब ने अनेक ठुमरियों की भी रचना की थी। वास्तव में ठुमरी रूप का प्रचलन लखनऊ के वाजिद अली शाह द्वारा हुआ नवाब ने ठुमरी के मोहक सौन्दर्य को पहचाना, अपनाया एवं राज्याश्रय दिया। ठुमरी गायन में मुख्यतः दो शैलियाँ हैं प्रथम बनारसी अंग की एवं द्वितीय लखनऊ अंग की ठुमरी। ठुमरी के दो भाग होते थे स्थायी एवं अन्तरा तथा रचना श्रृंगार रस में होती है जिसमें प्रायः नायिकाओं के अंग सौन्दर्य का वर्णन, वियोगिनी की विरह व्यथा अथवा राधा कृष्ण की लीलाओं का उल्लेख रहता है। ठुमरियाँ प्रायः दीपचन्द ताल या त्रिताल में गायी जाती है।[24] शरर अपनी प्रसिद्ध पुस्तक पुराना लखनऊ में लिखते हैं कि ठुमरी के कारण संगीत की धारा अवरूद्ध हुयी अब संगीत प्रेमी उच्चकोटि की राग–रागिनियों को छोड़कर ठुमरियाँ पसन्द करने लगे साथ ही संगीत का स्तर घटिया हुआ।

लखनऊ में गायी जाने वाली राग–रागिनियों में राग भैरवी विश्व में विख्यात हुयी।[25] यह लखनऊ की अनुपम देन है। इन रागों के गाने का समय भी भिन्न होता था। जैसे अर्धरात्रि के पश्चात् सोहनी गायी जाती थी एवं मध्यान्ह के पश्चात् पीलू राग गाया जाता था।[26] गाने के साथ–2 कव्वालियों का भी चलन अवध में हुआ था। संगीत प्रेमी सूफी जन धार्मिक उत्सवों में धार्मिक महापुरूषों की प्रशंसा में कव्वालियाँ गाते थे। कहा जाता है भारत में कव्वाली गाने की प्रथा विजयनगर के गोपाल नाइक ने प्रारम्भ की जो भारतीय एवं ईरानी शैली का मिश्रित रूप थी।

गायन एवं वादन दोनों एक दूसरे के पूरक है किसी एक के बिना दूसरा अधूरा है। अवधी संगीत में मुख्य रूप से चार प्रकार के वाद्य यंत्रों का प्रयोग हुआ–

(1) तार वाले वाद्य यंत्र
(2) कमान से बजाये जाने वाले यंत्र जैसे–सारंगी और दिलरूबा आदि
(3) ड्रम के समान वाद्य यंत्र जैसे–परवाज, तबला, नगाड़ा एवं ढोलक
(4) मुँह से हवा फूँककर बजाये जाने वाले वाद्य यंत्र जैसे–बांसुरी, सुरना इत्यादि।

मुख्य रूप से चार प्रकार के वाद्य यंत्रों का प्रयोग हुआ है।[27] इसके अतिरिक्त नौब (नौ वाद्य यंत्रों को एक साथ बजाया जाता था), ढोल ताशे (मुहर्रम में ताजियों के साथ), रौशन चौकी (विवाह के अवसर पर दो शहनाई वादक एवं एक तबला वादक), सितार एवं अंग्रेजी वाद्य (अंग्रेजी बैण्ड) का प्रयोग प्रचलन में था।

नवाबी शासनकाल में पुरूष नर्तक मुख्यतः दो प्रकार के होते थे, प्रथम हिन्दू कत्थक एवं रहसधारी तथा दूसरे प्रकार के मुस्लिम कश्मीरी भांड थे।[28] संगीत के साथ नृत्य का प्रचलन नवाब शुजाउद्दौला के समय से आरम्भ हो चुका था। यद्यपि कत्थक नृत्य का प्रारम्भ नवाबों से पूर्व राजस्थान में हो चुका था। नृत्य की कत्थक शैली का पूर्ण विकास नवाब वाजिद अली के काल में हुआ। कत्थक नृत्य नवाब वाजिद अली के समय अपने उत्कर्ष की चरम सीमा पर था। नवाब स्वयं नृत्य में रूचि रखते थे और उसके पोषक भी थे। कालका बिन्दादीन नामक भाईयों ने नवाब वाजिद अली के दरबार में कई बार अपने कत्थक नृत्य का हुनर पेश किया।[29] बिन्दादीन 184 घुँघरू बाँधकर नृत्य करते थे। नवाब के संरक्षण में नवाब वाजिद अली के संरक्षण में ठाकुर प्रसाद ने लखनऊ में कत्थक नृत्य की शिक्षा हेतु प्रथम स्कूल खोला था।[30] पुरूष नर्तक का द्वितीय समूह भांडों का था जो विशेषकर कश्मीर से आये थे एवं कुछ लखनऊ के निवासी थे जिन्होंने 'नक्काली' का पेशा अपना लिया। इन समूहों में एक लड़का बाल बढ़ाकर लड़कियों के वस्त्र धारण कर लड़की बनता एवं अन्य जन साज बजाते थे। इन भांडों और नक्कालों को विवाह के अवसर पर विशेष रूप से आमंत्रित किया जाता था।[31]

अवध के नवाबों के काल में पुरूषों के समान स्त्रियाँ भी नृत्य में पारंगत थी जिसका मुख्य श्रेय नवाबों तथा धनी वर्ग की विलासिता को दिया जाता है। राज्य द्वारा नृत्य को प्रोत्साहित एवं संरक्षण दिये जाने के कारण कई प्रसिद्ध नर्तकियाँ हुयी और उन्होंने बहुत नाम कमाया। रहीमा बीबी एवं जेबुन्निसाँ नामक दो नर्तकियाँ नृत्य में प्रवीण एवं बुद्धिमान थीं। जेबुन्निसाँ को फारसी में दक्षता प्राप्त थी। एक अन्य प्रसिद्ध नर्तकी गौहर जान का नाम नवाब आसिफउद्दौला के काल में मिलता है।[32] नवाब वाजिद शाह के काल में स्त्री नर्तकियों की संख्या बहुत अधिक थी। जो स्त्रियाँ नृत्य, संगीत में पारंगत थीं उन्हीं के साथ नवाब का अधिकांश समय व्यतीत होता था। नवाब ने इनमें से कई स्त्रियों से विवाह कर इन्हें महल का पद दिया।[33]

नवाब वाजिद अली शाह के शासनकाल में जिस समय संगीत अपने चरम पर चल रहा था, उसी समय ईष्ट इण्डिया कम्पनी ने उन्हें अवध की सत्ता से हटाकर माटियाबुर्ज (कलकत्ता) भेज दिया इसके पश्चात 1857 की क्रान्ति के समय संगीत में ठहराव दिखायी देता है। शहर में अस्थिरता का माहौल उत्पन्न होने के कारण संगीतज्ञों ने यहाँ से पलायन किया। 1857 की क्रान्ति के उपरान्त 1860 में जब लखनऊ का माहौल शान्त हुआ तब पुनः संगीत सम्बन्धी गतिविधियाँ अमीरज़ादों और नये उच्चाधिकारियों के नेतृत्व में फलने–फूलने लगी थी।

नवाबों के युग के पश्चात् संगीतज्ञों की स्थिति संभालने के लिए तवायकों ने विशेष प्रयास किये। इन्होंने अमीरों और महाराजाओं की महफिलों में ठुमरी प्रस्तुत की तथा इनके कार्यक्रमों में संगीतज्ञ संगत करने जाते थे। अतः संगीतज्ञों की अपनी विशेष पहचान न बन सकी परन्तु कालान्तर में संगीत के क्षेत्र में अपनी व्यक्तिगत पहचान बनाने के लिए संगीतज्ञों ने अथक प्रयास किये जिसके कारण उनकी राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कलाकार के रूप में पहचान बनी।

निष्कर्ष

इस प्रकार अवध के नवाबों के संरक्षण में संगीत और नृत्य खुब फला फूला। इन सबके परिणामस्वरूप ऐसा वर्ग उत्पन्न हुआ जो सिर्फ नृत्य और संगीत में प्रवीण था। इस वर्ग के लोग कई श्रेणियों में बंटे थे जैसे भांडों की श्रेणी एवं नृत्यकियों की अपनी अलग श्रेणी थी। इनमें विशेष रूप से वैश्याओं का एक वर्ग अलग ही समाज के सामने आया जो आज भी लखनऊ में देखा जा सकता था। इतिहासकार योगेश प्रवीन ने लखनऊ को तहजीब का शहर कहा और साथ ही उन्होंने अपनी पुस्तक बहारे अवध में लिखा, ''अंग्रेजों ने इन्हीं विशेषताओं के लिए लखनऊ को बेस्ट कास्मापाटिन सिटी आफ द वर्ड'' कहकर पुकारा है। यहाँ मुस्लिम गायक और वादक जन्माष्टमी के जश्न और होली के रंगों में सराबोर होकर गाते हैं और हिन्दू अदीब तथा शायर मजलिसों में जाकर मर्सिया पढ़ते और सलाम कहते हैं। अवधी संगीत की झलक बेगम अख़्तर की गायिकी में मिलती है। गज़ल, ठुमरी, दादरा, ख्याल, मर्सिया और कत्थक में वो संगीत नृत्य की विधाएँ हैं जो लखनऊ की संस्कृति में इस कदर घुली कि यह अवधी संस्कृति की पहचान बन गये। कालिका बिन्दादीन, ठाकुर प्रसाद, अच्छन महाराज, शम्भू महाराज, अच्छू महाराज और अब बिरजू महाराज ये सभी अवध के संगीत और नृत्य को नये शिखर पर स्थापित करने में सफल रहे।

सन्दर्भ सूची

1. शरर अब्दुल हलीम, पुराना लखनऊ (सम्पादक–शकील सिद्दीकी), भारत बुक सेन्टर, लखनऊ, 2012, पृष्ठ–103
2. वही–पृष्ठ–103
3. वही–पृष्ठ–103
4. एस0एस0 जाफर, एजूकेशन इन मुस्लिम इंडिया, दिल्ली, 1972, पृष्ठ–55
5. बाजपेयी राम किशोर, लखनऊ के संगीतकार, हमारा लखनऊ पुस्तकमाला, हिन्दी वाङ्मय निधि लखनऊ, 2008, पृष्ठ–9
6. वही–पृष्ठ–10
7. शरर अब्दुल हलीम, पुराना लखनऊ (सम्पादक–शकील सिद्दीकी), भारत बुक सेन्टर, लखनऊ, 2012, पृष्ठ–105
8. बाजपेयी राम किशोर, लखनऊ के संगीतकार, हमारा लखनऊ पुस्तकमाला, हिन्दी वाङ्मय निधि लखनऊ, 2008, पृष्ठ–11
9. वही पृष्ठ–11

10. एस.एस. हुसैन, लखनऊ की तहजीब, मीरास, लाहौर, 1975, पृष्ठ–52
11. वही पृष्ठ–58
12. बाजपेयी राम किशोर, लखनऊ के संगीतकार, हमारा लखनऊ पुस्तकमाला, हिन्दी वाड्मय निधि लखनऊ, 2008, पृष्ठ–11
13. कृष्ण मोहन सक्सेना, अवध का संगीत (पत्रिका) लखनऊ महोत्सव, 1982, पृष्ठ–16
14. बाजपेयी राम किशोर, लखनऊ के संगीतकार, हमारा लखनऊ पुस्तकमाला, हिन्दी वाड्मय निधि लखनऊ, 2008, पृष्ठ–15
15. हैदर, सवानिहत–ए–सलातीन–ए–अवध भाग–1, पृष्ठ–263
16. बाजपेयी राम किशोर, लखनऊ के संगीतकार, हमारा लखनऊ पुस्तकमाला, हिन्दी वाड्मय निधि लखनऊ, 2008, पृष्ठ–16
17. जाफर हुसैन, कदीम लखनऊ की आखिरी बहार, नई दिल्ली, पृष्ठ–211
18. वही पृष्ठ–211
19. सुरूर, फसना–ए–इबरत, पृष्ठ–13
20. जाफर हुसैन, कदीम लखनऊ की आखिरी बहार, पृष्ठ–66
21. बाजपेयी राम किशोर, लखनऊ के संगीतकार, हमारा लखनऊ पुस्तकमाला, हिन्दी वाड्मय निधि लखनऊ, 2008, पृष्ठ–20
22. शरर अब्दुल हलीम, पुराना लखनऊ (सम्पादक–शकील सिद्दीकी), भारत बुक सेन्टर, लखनऊ, 2012, पृष्ठ–108
23. वही पृष्ठ–109
24. समर बहादुर सिंह, रस भरी ठुमरी, (पत्रिका) लखनऊ महोत्सव, 1983, पृष्ठ–56
25. शरर अब्दुल हलीम, पुराना लखनऊ (सम्पादक–शकील सिद्दीकी), भारत बुक सेन्टर, लखनऊ, 2012, पृष्ठ–110
26. जाफर हुसैन, कदीम लखनऊ की आखिरी बहार, नई दिल्ली, पृष्ठ–212
27. एस.एम. जाफर, सम कल्चरल आस्पेक्ट्स आफ मुस्लिम रूल इन इंडिया, दिल्ली, 1979, पृष्ठ–163
28. शरर अब्दुल हलीम, पुराना लखनऊ (सम्पादक–शकील सिद्दीकी), भारत बुक सेन्टर, लखनऊ, 2012, पृष्ठ–115
29. बनर्जी प्रोजेश, कत्थक डान्स थ्रू एंजेल, दिल्ली, 1982, पृष्ठ–63
30. एस.के. चौबे, म्यूजीशियन्स आई हैव मेट, पृष्ठ–59
31. एस.एस. हुसैन, लखनऊ की तहजीवी मीरास लाहौर, 1975, पृष्ठ–137
32. वही पृष्ठ–64
33. मिर्जा फिंदा अलीशाह (संकलनकर्ता), वाजिद अलीशाह कृत महलखाना शाही, 1914, पृष्ठ–42